विश्व मंच पर जैन धर्म को प्रस्तुत करने वाले कुछ विदेशी विज्ञ (विद्वान)

डॉ. अल्का सिंघी

सारांश—**विष्व में अनेक तरह के धर्म व संस्कृतियां है। अंतराष्ट्रीय धर्मो की गणना में ईसाई, इस्लाम, बौद्ध और कनफ्यूषियम आदि धर्म विख्यात है। हिन्दु धर्म भी प्रमुख धर्म की श्रेणी में आता है। जैन धर्म को हिन्दु धर्म में ही शामिल कर लिया गया है परन्तु जब विदेषी विद्वान जैन धर्म के सिद्धांत, कलाकृतियों, पाण्डुलिपियों का अध्यय करते है तब उन्हें जैन धर्म व संस्कृति की तरफ आकर्षण महसूस होता है। कई विदेषी लेखकों और विद्वानों ने जैन धर्म व संस्कृति पर कार्य किये है जिनमें से कुछ का परिचय इस तरह है :–**

I. हरमन जॉर्ज जैकाबी (भ्मतउंदद श्रंबवइपए 1850.1937)

हरमन जॉर्ज जैकाबी का जन्म जर्मन के कोलोना शहर में हुआ था। जैन धर्म के अध्ययन में अग्रणी थे। 1879 में उन्होंने अन्तराष्ट्रीय स्तर यह सिद्ध किया कि जैन धर्म प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। यह बौद्ध धर्म से अलग है।[1] इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में जैन ग्रंथों के कई संस्करण प्रकाशित किये और उनका अनुवाद भी किया था। जैकाबी ने दो बार भारत की यात्रा की थी। पहली यात्रा उन्होंने 1873 से 1874 में की। इस दौरान वे कोलकत्ता गये थे। आचार्य विजयधर्म–सूरी के तत्वाधान में उन्हें 'जैन दर्शन दिवाकर' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। अपभ्रंश जैन ग्रन्थों की खोज में वे गुजरात, राजस्थान आदि कई क्षेत्रों का भ्रमण किया था। इनके अध्ययन के आधार पर उन्होंने सिद्ध किया कि जैन धर्म के अनुयायियों की मान्यताएँ और प्रथाएँ हमेशा से ही अन्य धर्मो से भिन्न रही है। उन्होंने पश्चिमी पर्यवेक्षकों व विद्वानों के बीच प्रचलित इस धारणा को चुनौती दी कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की एक शाखा है या हिन्दू धर्म की एक शाखा है। 1879 में 'कल्प–सूत्र' के संस्करण के लिए और 1880 में 'महावीर और उनके पूर्ववर्तियों' नामक शीर्षक वाले लेख जैन अध्ययन के इतिहास में मील के पत्थर है। जैकाबी ने भक्तामारा स्रोत, कल्याणमंदिर स्रोत का जर्मन में भी अनुवाद किया था।[2] जैकाबी ने मूलभूत ग्रन्थ तत्वार्थ सूत्र पर काफी कार्य किया। 1897 में जैकाबी ने अपने पांडुलिपियों के संग्रह को ब्रिटिश संग्रहालय को बेच दिया था। ये पाडुलिपियां आज भी जैन अध्ययन के विकास के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान में जैनपीडिया द्वारा इन पांडुलिपियों को डिजिटाइज किया गया है।

II. आनंद कुमारस्वामी (।दंदकं ब्ववउंतूंेउलए 1877.1947)

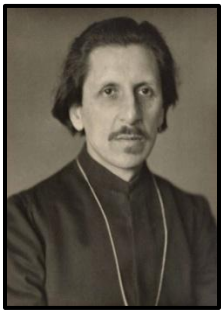

आनंद कैंटिश कुमारस्वामी एक श्रीलंका के प्रख्यात कला इतिहासकार, तत्वमीमांसाविद् (डमजंचीलेपबपंद) थे। इन्होंने बोस्टन संग्रहालय के क्यूरेटर के रूप में कार्य भी किया। ये प्राच्य कला को नई पहचान देने के लिए प्रसिद्ध हुए थे। इनका जन्म 1877 में कोलम्बों में तमिल परिवार में हुआ था। कला को जीवन का अभिन्न अंग मानते हुए ये दर्शन और अध्यात्म से जुड़ गये थे। जैन चित्रकला पर शोध कर कुमार स्वामी ने जो लेख लिखा, वह 1914 में 'जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट एंड इंडस्ट्री' में प्रकाशित हुआ था। कुमार स्वामी की पुस्तक 'नोट्स ऑफ जैन आर्ट (1914)' में जैन धर्म, जैन प्रतिमा विज्ञान और जैन ग्रंथों के बारे में जानकारी दी गई थी। यह जानकारी जार्ज बुटलर, जेम्स बर्गेस, हरमन जैकाबी और रामकृष्ण जी भंडारकर के प्रकाशनों से प्राप्त की थी। कुमार स्वामी ने जैन चित्रकला पर कुछ टिप्पणियां की थी[3] जो इस तरह हैः– (1) जैन चित्रकलाएं कागज पर बनी सबसे पुरानी ज्ञात भारतीय चित्रकलाएं थी और भारतीय कला के एक लगभग अज्ञात स्कूल का प्रतिनिधित्व करती थी। (2) यह स्कूल पुरानी परंपराओं पर आधारित है और राजपूत स्कूल से भी पुराना है। (3) पश्चिमी भारत के जैन भंडारों की पांडुलिपि संपदा में पुरानी सचित्र पांडुलिपियों की मिलने की उम्मीद करते थे। बोस्टन संग्रहालय केटलॉग भाग प्ण् जैन चित्रकला और पांडुलिपियां (1924) मुख्य रूप से कुमारस्वामी के स्वयं के संग्रह से प्राप्त सचित्र जैन पांडुलिपियों पर आधारित था। कुमार स्वामी ने निष्कर्ष निकाला था कि राजपूत चित्रकला के विपरीत, लेकिन नेपाली बौद्ध कला की तरह जैन चित्रकला एक औपचारिक और पदानुक्रमित परंपरा की कला है। कुमार स्वामी ने महावीर भगवान की माता त्रिशला के स्वप्न दर्शन और वास्तविक गर्भाधान की रात के बाद सुबह के 'शुभ सूर्योदय (श्री सूर्योदय) के एक अद्भूत चित्र की व्याख्या की है। यह एक अध्यात्मिक रचना है जिसमें कई उपमाएँ हैं। यह वह घड़ी है जब महान महावीर का वास्तव में जन्म हुआ था और ब्रह्मांड एक प्रकाश से जगमगा रहा था' (ज्योतिर्ज्योतम्)। उन्होंने माना कि जैन कला निरंतर कथा पर आधारित है जो कथा विधि दृश्य कला से ही संभव है और शब्दों में कहना कठिन है। कुमार स्वामी निरंतर कथात्मक कला, प्रभाव और घटनाओं के चित्रकार द्वारा परिकल्पित वर्तमान की तुलना में लौकिक और स्थानिक विस्तार से अलग, शाष्वत वर्तमान के प्रतिनिधित्व की ओर अधिक प्रवृत होती ळें

III. पॉल डुंडास (च्नस क्नदकेंए 1952.2023)

पॉल डुंडास एक प्रतिष्ठित स्कॉटिश इंडोलॉजिस्ट हुए। ये एडिनबर्ग विश्वविद्यालय में संस्कृत के वरिष्ठ व्याख्याता थे। वे जैन धर्म, प्राकृत भाषा और भारतीय दर्शन के विशेषज्ञ के रूप में जाने जाते थे। इनकी पुस्तक 'जैम श्रंपदे' जैन इतिहास, संप्रदायों और धार्मिक प्रथाओं का एक व्यापक अध्ययन पर लिखी गई है।[4] डुडांस ने अपनी पुस्तक में लिखा कि जैन संस्कृति विश्व में सबसे प्राचीन होते हुए भी सबसे कम समझे जाने वाले धर्मों में से एक है। इसका मूल सिद्वांत सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा रखना है। उन्होंने अपनी पुस्तक में 2500 वर्षों का जैन इतिहास, उसके प्रमाण, ग्रन्थों, संप्रदायों, अनुष्ठानों, कर्म सिद्धातों, सामाजिक व धार्मिक व्यवस्थाओं को परिभाषित कर उसका विश्लेषण किया है। उन्होंने लिखा है कि भारत एक धर्म–निरपेक्ष देश होने के बाद भी सरकार की तरफ से जैन धर्म को दर्जा नहीं दिया गया जिसका कारण रूढ़िवादी विचारधारा वाले कई प्रमुख जैनों ने अदालत में अपने धार्मिक ग्रंथों की प्रतियाँ पेश करने से इनकार कर दिया, उन्हें डर था कि वे अपवित्र हो सकती है। इस कारण भारतीय पर्यवेक्षण भी जैन पहचान की प्रकृति को लेकर अनिष्चित रहें। 16वीं शताब्दी के आरंभ से ही यूरोपीय लोग जैन धर्म से परिचित थे वे उन्हें बनिया कहते थे। पश्चिमी यात्री और मिशनरी जैन जीवन शैली में अधिक रूचि रखते थे। अहिंसा, शाकाहार और तपस्वी प्रथाओं का उल्लेख सम्मानजनक रूप से बार–बार करते थे। पॉल डुडांस ने अपनी पुस्तक में मथुरा के स्तूप व कई दुलर्भ पांडुलिपियों व ताड़पत्रों का वर्णन किया है। उन्होंने कहा कि इस धर्म के अनुयायी, संख्या की दृष्टि से चाहे कम है परन्तु यह धर्म व संस्कृति विष्व को नैतिक आचरण सिखाती है।

IV. कर्ट टिट्ज (ज्ञनतज ज्पज्रमए 1961)

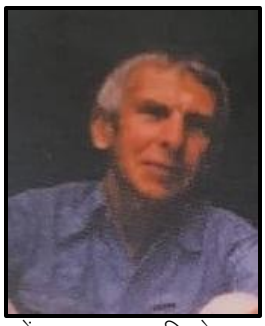

इ इ जन्म से जर्मन और 1961 से आस्ट्रेलियाई नागरिकता प्राप्त कर्ट टिट्ज, जो वर्तमान में दक्षिणी जर्मनी के छोटे गांव में रहते है। ये उन विद्वानों में से है जो प्राचीन पांडुलिपियों के अध्ययन व उनके अनुवाद का काम करते है। 1968–69 में वे भारत आये और उन्होंने माउंट आंबू व श्रवणबेलगोला का भ्रमण किया। उन्हें एहसास हुआ कि वे एक ऐसे धर्म से रूबरू हो रहे है जिसके बारे में पूरा विश्व भी परिचित नहीं है। उसका परिचय देने के लिए उन्होंने जैन धर्म कई छोटे गाँव व तीर्थों का भ्रमण कर सचित्र पुस्तक का लेखन किया। इस पुस्तक का नाम है, श्श्रंपदपेउ . । चपबजवतपंस ळनपकम जव जीम त्मसपहपवद व िछवद.टपवसमदबमश उन्होंने अपनी इस पुस्तक में लिखा है कि 'विडंबना यह है कि जैन धर्म विश्व के सबसे कम ज्ञात धर्मों में से एक है।'[5] विश्व के इस शास्त्रीय अहिंसा धर्म के मुख्य सिद्धान्त को उन्होंने अपनी पुस्तक में बताया है। साथ ही साथ यह भी कहा कि 'विष्व में भारत को बुद्ध व गांधीजी की भूमि कहा जाता है यहाँ एक तीसरे शब्द महावीर भी जोड़ना चाहिए। महावीर इन तीनों में से सबसे प्राचीन व बड़े है।' जैन धर्म के सिद्धान पहली नजर में ही आपको आकर्षित करते है। युद्धो से मुक्त दुनिया ही हिंसा से मुक्त दुनिया है। शांति के साथ अहिंसा की भी बात होनी चाहिए। अहिंसा दैनिक अभ्यास व निरंतर किये जाने वाला कार्य है।

V. नलिनी बलबीर (छंसपदप ठंसइपतए 1955)

नलिनी बलबीर, एक फ्रांसीसी इंडोलॉजिस्ट है जो पेरिस में रहती है। वह संस्कृत, प्राकृत, पाली, जैन धर्म व बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म की विद्वान है। कुछ हाल के ही वर्षो में उन्होंने ब्रिटेन या यूरोप महाद्वीपीय में रखी जैन पांडुलिपियों के संग्रह पर अध्ययन किया है। डॉ. नलिनी बलबीर वर्तमान में सोरबोन नॉवेल (पेरिस विश्वविद्यालय–प्रथम) में भारतीय अध्ययन (स्ट्यूड्स इंडिएन्स) की प्रोफेसर हैं। ब्रिटिश संग्रालय और विक्टोरिया एवं अल्बर्ट संग्रहालय में जैन पांडुलिपियों का सूचीकरण करने और जैन धर्म को विद्वतापूर्ण परिप्रेक्ष्य प्रदान करने का श्रेय उन्हें ही जाता है। उन्होंने विदेशी विद्वानों द्वारा इस विषय के अध्ययन की परंपरा को आगे बढ़ाने का श्रेय भी दिया जाता है। बोडलियन लाइब्रेरी (ऑक्सफोर्ड) में 'जैन खजाने' की प्रदर्शनी 20 मई 2012 से 1 जुलाई 2012 तक लगी थी उसमें नलिनी बलबीर ने कहा कि कैसे भारत में आने वाले पश्चिमी लोगों को जैन परंपराएँ इतनी अजीब लगी।[6] वे इन्हें समझ नहीं पाते थे। अधिकांश जैन पांडुलिपियां मूल रूप से 19वीं शताब्दी के दौरान भारत के इंडोलॉजिस्ट और ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में कार्यरत कर्मचारियों जिनमें एच. टी. कोलबुक, जी बुलहर, एच. जैकोबी, सी. मैकेंजी, एल. सी. बर्नेला द्वारा व्यक्तिगत संग्रह में से थी। 16वीं और 17वीं शताब्दी में पश्चिमी भारतीय तट पर पूर्तगाली, डच, ब्रिटिश, इतालवी व अन्य यूरोपवासियों का सामना जैनियों व जैन साधुओं से हुआ। जिन्हें वे बनिया कहते थे और साधुओ का वर्तिया (वर्टिया) कहते थे। जैन प्रथायें उन्हें बड़ी अजीब लगती थी क्योंकि ये प्रथायें हर जीव के प्रति सम्मान पर जोर देती थी। यह अहिंसा सिद्धांत उनकी समझ से परे था।

VI. राबर्ट जे. डेल बोटा (त्वइमतज श्र क्मस ठवदजंए 1949)

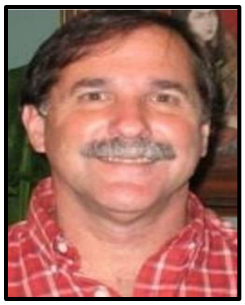

राबर्ट जे. डेल बोटा एक स्वतंत्र विद्वान, क्यूरेटर और संग्राहक है। दक्षिण एशियाई कला, विशेष रूप से भारतीय चित्रकला पर इनकी विशेषज्ञता है। मिषिगन विश्वविद्यालय (अमेरिका) से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के बाद, उन्होंने सैन फ्रांसिस्को के एशियाई कला संग्रहालय, पोर्टलैंड कला संग्रहालय, न्यू ऑरलियन्स कला संग्रहालय सहित कई अन्य संस्थानों के लिए प्रदर्शनियों का आयोजन किया है। जैन विषय श्छवजमे वद छनकपजल पद क्पहंउइतं श्रंपद ंतजए जैम च्नतेनपज व िसअंजपवद रू श्रंपद ।तज थ्तवउ प्दकपंश किताबों का

सम्पादन किया है।[7] संग्रहालयों में लगाई गई प्रदर्शनियों में जैन कला पर ये लिखते है कि प्रारंभिक सिंधु घाटी काल से इसका सम्बन्ध रहा है। बुद्ध व जिना की मूर्तियाँ दोनों को चित्रित करने की परम्परा एक जैसी है। इन दोनों को एक नजर में अलग करना मुश्किल है, पर जो आकृति वस्त्रविहीन है या नग्न है उन्हें हम जिना कह सकते है। कल्पसूत्र के बारे में व्याख्या करते हुए कहते है कि कल्पसूत्र जिनों के जीवन का वर्णन करने वाला एकमात्र ग्रंथ है लेकिन वास्तव में भारतीय विभिन्न भाषाओं में ऐसे कई ग्रंथ है जो इन कथाओं को कही अधिक विस्तार से बताते हैं।

VII. जॉन एलेक्जेण्डर गाय (श्रवीद ।समगंदकमत ळनलए 1949)

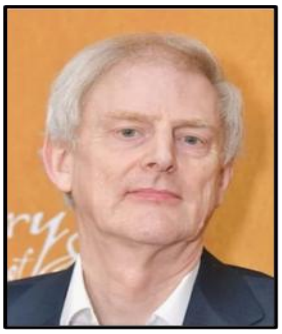

जॉन गाय एक ब्रिटिश इतिहासकार है। इनका जन्म ऑस्ट्रेलिया में हुआ। अपने माता–पिता के साथ 1952 में ब्रिटेन चले गये थे। कैम्ब्रिज के क्लेयर कॉलेज से इन्होंनें इतिहास का अध्ययन किया। बाद में 1976 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा यार्क पुरस्कार भी प्रदान किया गया। इन्होंने जैन धर्म पर कई आर्टिकल लिखें। मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट के एशियाई कला विभाग में दक्षिण और दक्षिणपूर्व एशियाई कला के क्यूरेटर जॉन गाय ने मार्च 2010 में जैन कला पर एक व्याख्यान दिया था।[8] जो 'शांति पूर्ण विजेता : जैन पांडुलिपि, चित्रकला और मूर्तिकला' न्यूयॉर्क संग्रहालय द्वारा आयोजित प्रदर्षनी थी जो 10 सितम्बर 2009 से 28 मार्च 2010 तक चली थी।
वर्तमान में क्यूरेटर जॉन गॉय ने 2023 में एक डॉक्यूमेंट्रीज बनाई। यह जैन कलाकृतियों का संक्षिप्त विवरण देती है।[8] यह बताती है कि उन्हें अन्य परम्पराओं से अलग कैसे किया जाए। बौद्ध व जैन कलाकृतियों की प्रतिमा रचना अक्सर इतनी मिलती जुलती है कि लोग इनमे अंतर नहीं कर पाते और जैन कलाकृतियों को बुद्ध समझ लेते है और विपरीत भी, या किसी कलाकृति को किसी दूसरी पंरपरा की कलाकृति समझ लेते है। मेट्रोपॉलिटिन म्यूजियम ऑफ आर्ट में दिए गए इस व्याख्यान में जॉन गाय विभिन्न जैन कृतियो का विश्लेषण करते है तथा दिखाते है कि किसी न किसी परंपरा से संबंधित के रूप में कैसे पहचान सकते हैं। वे जैन परंपरा के सदियों पुराने विकास का भी बहुत अच्छा विवरण देते है और उनकी प्रस्तुति में हमें जैन कला की प्रसिद्ध कृतियाँ देखने को मिलती है। अंत में वे पाडुलिपि परंपरा पर भी संक्षेप में चर्चा करते है।

VIII. एबरहार्ड फिषर (म्इमतींतक थ्पेबीमतए 1941)

इनका जन्म अक्टूबर 1941 में बर्लिन में हुआ था। वे नृवंषविज्ञानी और कला इतिहासकार है, जिन्होंने भारत, अफ्रीकी और एशियाई स्थानों की विरासतों पर शोध किया है। वे रीटबर्ग सोसाइटी (स्विट्जरलैंड) के पूर्व निदेशक है। भारत सरकार द्वारा उन्हें 2012 में पद्मश्री के नागरिक सम्मान से सम्मानित किया गया था। इसके अलावा भी उन्हें कई पुरस्कार प्राप्त हुए है। एबरहार्ड फिशर ने ज्योतिंद्र जैन के साथ मिलकर जैन कला और जैन प्रतिमा कला के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया है। उन्हें विशेष रूप से 1970 और 1980 के दशक में जैन प्रतिमानों और उनके अनुष्ठानों पर शोध कार्य भी किया। 1974 में ज्यूरिख के म्यूजियम रिटबर्ग में जैन कला पर एक प्रदर्शनी की, जिसे यूरोप में जैन कला पर पहली प्रस्तुति मानी गई है। फिशर ने ज्योतिंद्र जैन के साथ मिल कर 'कला और अनुष्ठानः भारत में जैन धर्म के 2500 वर्ष (1947) नामक पुस्तक लिखी थी[9], जिसमें भारत में जैन धर्म के 2500 वर्षों के कला और धार्मिक पहलू को बताया गया था। फिषर ने 40 से अधिक अपनी पुस्तकों के संग्रह को जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली को दान कर दिया था।

IX. निष्कर्ष

इनके अलावा भी कई विद्वान है जो जैन कलाकृतियों, पाण्डुलिपियों व सिद्धांतों पर कार्य कर रहे हैं। यह संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। इनका प्रयास जैन सिद्धान्तों को विष्व पटल पर रख वर्तमान को समस्याओं का समाधान करना है।

संदर्भ

[1] डॉ हीरा लाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ. 125, 126 प्रथम संस्करण 1962, कला एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर

[2] ण ीजजचेरूध्ध्रंपदचमकपंण्वतहध्जीमउमेध्चमवचसमध्जनकलपदह. रंपदपेउधीमतउंदद.रंबवइपध

[3] ीजजचेरूध्ध्पहदबंण्हवअण्पदध्ंदकं.।.बववउंतूंउले.मेंले.व.िरंपदं.तजध

[4] क्नदकें च्नसए जीम श्रंपदेए डवजपसंस ठंदंतेपकेंए ैमबवदक म्कपजपवदए 2017

[5] ज्पज्रम ज्ञनतज ए श्रंपदपेउ . । चपबजवतपंस ळनपकम जव जीम त्मसपहपवद व िछवद.टपवसमदबमए डवजपसंस ठंदंतेपकेंए थ्पतेज म्कपजपवदए 2001

[6] ;पद्ध ंसइपतए छंसपदपण श ।द प्दजतवकनबजपवद जव जीम श्रंपद थ्पजीण्श जीम ठतपजपेी स्पइतंतल रू ैबतमक ज्मगजेए जीम ठतपजपेी स्पइतंतलए 12 छवअण 2018ए इसण्नणण ठसवह
पपद्ध ीजजचेरूध्ध्ूण्रंपदवसवहलण्वतहध्रंपद.जतमेंनतमे.ंज.इवकसमपंद.सपइतंतपमेध

[7] ण ;पद्ध त्वइमतज श्र क्मस ठवदजंए जीम च्नतेनपज व िैवस्ट ।ज्व्छरू श्र ।प्छ ।त्ज् तिवउ प्दकपं 2021ए छमू ल्वतसमंदे डनेमनउ वत ंतजए 1949ए ैप्ठछ.978.0.89494.130.6
पपद्ध स्नेजतंजपदह जीम पितेज ।पदहरू क्पहंउइतं प्उंहमे व ि।ीपेमां क्तण त्वइमतज श्रण क्मस ठवदजं च्नइसपेीमक 11ण01ण2018ए ैोए 1997.2026 भ्मतम ीवू 4न अमतेपवद.4ण्6ए न्दपअमतेपजल व िस्वदकवद ब्श्रै दमू समजजमतए डंतबी 2008ए प्नम.3द्धीजजचेरूध्ध्मतमदवू4नण्दमजध्ध्पकत्र136185

[8] ण ;पद्ध ळनलेए श्रवीदएष्श्रंपद ैबनसचजनतमण्ष प्द भ्मपसइतनदद ज्पउमसपदम व ि।तज भ्पेजवतलण छमू ल्वतारू जीम डमजतवचवसपजंद डनेमनउ व ि।तज 2000ण
पपद्ध ीजजचेरूध्ध्कींतउं.कवबनउमदजंतपमेण्दमजध्रवीद.हनल.पकमदजपलिपदह.रंपदपेउ.पद.पदकपंद.तज

[9].म्इमतींतक थ्पेबीमतए ।तज ंदक तपजनंसे रू 2500 लमंत वि श्रंपदपेउ वि पद प्दकपंश्ए छमू क्मसीपश्े ैजमतसपदह चनइसपींमत चतपअंजम रू छमू लंता कपेजतपइनजमक इल प्दजमतदंजपवद च्नइसपबंजपवद ैमतअपबमए 1977ए ैठछ.0800201787